

नई कविता आंदोलन में स्त्री विमर्श एक विश्लेषण

डॉ आशा मिश्रा

प्राचार्या, समादेवी महिला पीजी कॉलेज

नूआँ (झुंझुनू) राजस्थान

सार

दुनियाँ भर में नारी मुक्ति आंदोलनों की गुंज, समता समानता, आजादी जैसे छलावे भरे खूबसूरत नारों, तमाम महिला संगठनों की सक्रियता और प्रगतिशीलता की कोशिशों के बावजूद पुरुष प्रधान समाज में औरतों की जिन्दगी में कोई बेहतर बदलाव नहीं आ सका है। बाहर भीतर शोषण, प्रताड़ना, अपमानित किये जाने का सिलसिला अब भी जारी है। उसके सपने पिता से पति की देहरी तक कैद है और आदर्श, त्याग, समर्पण, बलिदान, सहनशीलता के सारे उपदेश उसी तक केन्द्रित हैं। अपने अधिकारों इच्छाओं, अभिलाषाओं के लिए कोई जगह नहीं है। हर मोड़, हर मुकाम पर उसे किसी न किसी रूप में मानसिक, शारीरिक प्रताड़ना मिलती रही है। फिर भी हजारों दुःख दर्द दिल में समेटे समाज के क्रूर पार्श्विक व्यवहार को बर्दाश्त करती हुई पतित-पावनी की तरह बहती चली आ रही है। जंजीरों में बंधे कैदी की तरह अब वह जीवन नहीं बिताएगी, यह विरोध उसके स्वरूप को बदलने लगा है। आधुनिकता के परिदृश्य में नारी के बढ़ते कदम को देखकर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि नारी - नारीत्व से दूर होती हुई पुरुष बनती जा रही है। आखिर ऐसा क्यों ? स्त्री-पुरुष परस्पर पुरक होकर भी दो स्वतंत्र इकाइयाँ हैं। दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व है, फिर दोनों की स्वतंत्र अस्मिता क्यों नहीं ? यह प्रश्न उसके मन मस्तिष्क को झकझोरने लगा है। जाग उठा है उसका अभिमान स्वाभिमान, उत्पन्न हो गयी है उसमें कुछ नया कर दिखाने की चाह। यही कारण है कि आज उसका स्वरूप बदला हुआ-सा प्रतीत हो रहा है। समय के साथ बदलते परिवेश में महिलाओं का स्वरूप बदला है और उसका अंकन ही महिला उपन्यासकारों ने उपन्यास साहित्य में किया है।

मुख्य शब्द- कविता, स्त्री, साहित्य, कहानी, स्त्री विमर्श

प्रस्तावना

संकुचित विचारधारा के लोग स्त्री-विमर्श को पुरुषों के विरुद्ध आंदोलन के रूप में देखते हैं। स्त्री-विमर्श का अर्थ पुरुषों का विरोध करना नहीं है। स्त्री-विमर्श परिवार तथा समाज को तोड़ने का काम नहीं करता। स्त्री-विमर्श के द्वारा स्त्री को समाज में सम्मान दिलाना ही एकमात्र उद्देश्य रहा है। स्त्री-विमर्श की विचारधारा को असमानता के चश्मे से देखना निरर्थक है। स्त्री समाज का मुख्य हिस्सा है उसको मुक्ति दुखों से मुक्ति दिलाना तथा मनुष्य के रूप में उससे व्यवहार करना ही मानवीयता है। भारतीय साहित्य में स्त्री चिंतन की परम्परा बहुत पहले से चली आ रही है। हिन्दी साहित्य नारी चिंतन की एक लम्बी परम्परा है। आज़ादी के समय से लेकर आज तक स्त्री विमर्श की एक सुदीर्घ परम्परा है। स्त्री विमर्श में अनेक

प्रकार साहित्यिक विधाओं के माध्यम से चिंतन को रेखांकित किया गया है। कहानी, उपन्यास, आत्मकथा और कविता, इन्हीं साहित्य की विधाओं में सर्वाधिक व महत्वपूर्ण विमर्शकारी स्वरूप सामने आता है। इन सभी विधाओं में स्त्री विमर्श अपने अपने तरीके से सामने आता है। सबसे मर्मस्पर्शी तरीके से स्त्री चिंतन का स्वरूप समकालीन कविताओं के माध्यम से व्यक्त हुआ है। साहित्य में चिंतन जब से आरम्भ होता है, उसका रेखांकन हम कोई समय निश्चित कर के नहीं कर सकते। हाँ इतना अवश्य है कि एक समय सीमा अवश्य बनाते हैं वह भी मोटे तौर पर। समकालीन रचनाओं में स्त्री विमर्श के स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम समकालीनता की रेखा अवश्य खींच लें। इस एक काल विशेष की रचनाओं को समझने और उसके विश्लेषण में आसानी होगी। प्रश्न यह है कि हम समकालीनता का निश्चयीकरण कैसे करें। किस समय विशेष से हम रचनाओं को समकालीनता स्वीकार करें। समकालीन का सरलीकृत तरीके से अपने अपने सुविधा के अनुसार इसकी समय सीमा को कम या अधिक के किया जाता है। आवश्यकता के अनुसार इसकी सीमा काफी विस्तार न सीमित कर दी जाती है। "कोशगत अर्थों समकालीनता और समसामयिकता को अंग्रेजी के "कन्टम्पोरिनिटी" (कॉन्टर्मपोरनेटी) अथवा "को-ईवाल" (कोएवल) का समान वाची माना गया है जिसका अर्थ है "उसी समय या कालखण्ड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखण्ड में जी रहे व्यक्ति।" यह अर्थ समकालीनता को निश्चित कालखण्ड में समेटता है।" समकालीनता अपने आप में एक खास प्रश्न है। अनेक विद्वानों ने इस पर अपने मत दिये हैं। डॉ० नरेन्द्र मोहन कहते हैं: "समकालीन का अर्थ किसी कालखण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना उनके मूल श्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है। समकालीनता तात्कालिकता नहीं है।"

डॉ० नरेन्द्र समकालीनता की पहचान आधुनिकता से जोड़ते हुए करते हैं। इसमें वे युगबोध को भी शामिल करते हैं। लेकिन समकालीनता, समकालिकता और आधुनिकता बोध अलग अलग है। समकालीन होना आधुनिक हो जाना नहीं है और आधुनिक होना समकालीन होना नहीं। कोई रचनाकार जिन सम्बन्धों में आधुनिक होता उन्हीं सम्बन्धों में वह प्रासंगिक भी होता है। जैसे कबीर प्रासंगिक हो सकते हैं क्योंकि उन में आधुनिकता बोध है लेकिन वे समकालीन नहीं स्वीकार किये जायेंगे। समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री जीवन की अनेक छवियाँ सामने उभर कर आती है। अनेकसः संघर्ष करती स्त्री अपने अधिकार व समस्त प्रकार के बंधन से मुक्त होकर मनुष्य की तरीके से जीने की आकांक्षा के साथ सामने आती है। वह देह मुक्ति के साथ लिंग से भी मुक्ति की आशा रखती है। "राजनीतिक या समाजिक समस्याओं को उठाने के स्थान परिवेश और समाज के अनेक छोटे छोटे संदर्भों को अपनी कविता का विषय बनाना चंद्रकला को अधिक प्रिय है। इन संदर्भों के माध्यम से ही वह किसी संदर्भ तक पहुँचना चाहती है। बाहरी दुनिया की अपेक्षा कवित्री मुक्ति अन्तर में झांकना चाहती है और आंतरिक जगत की विविधता को उभारना चाहती है।" व्याक्ति के अंतरंग व बहिरंग का एकाकर ही जीवन का वास्तविक साक्षात्कार है। स्त्री चिंतन इसी समानता के निमर्श को आगे बढ़ाता है। जहाँ किसी प्रकार के द्वैध या दुविधा का भाव नहीं रह जाता। मनुष्य केवल

मनुष्य के रूप में देखा और स्वीकार किया जाता है। जहाँ सभी समाजिक व जागतिक तथा मानव सभ्यताओं द्वारा निर्मित बंधन समाप्त कर दिये जाते हैं। किसी प्रकार की सत्ता की कोई भी वर्चस्व की एक बूँद भी नहीं रह जाती। समकालीन हिन्दी कविता में मानव का चित्रण विविध ढंग से हो रहा है। इस दौर की रचनाओं में स्त्री जीवन का स्वरूप काफी हद तक वर्तमान के भूमण्डलीकृत व्यवस्था के अनुरूप चित्रित हो रहा है। भूमण्डलीकरण ने भारत ही नहीं समूची दुनिया में बाजारवाद को जन्म दिया है। इसने पूरी दुनिया में उपभोक्तावाद को पैदा किया है। नवउदारवाद और पूँजी के मुक्त व्यवहार और व्यापार में महिलाओं का उपयोग पूरी तनमयता से किया जा रहा है। आज समाज का प्रत्येक हिस्सा भूमण्डलीकृत व्यवस्था से गहरे स्तर तक प्रभावित है।" भूमण्डलीकरण जीवन के हर कोने में अस्तित्व के हर रूप का वस्तुकरण करता है।" यह जितना सही है कि स्त्री भारतीय समाज में जितना दबी रही है उतना ही उसके दबेपन को इस्तेमाल भी किया गया है। उसकी उनमुक्ता व मुक्ति के नाम पर जैसे जैसे देश में नारी आंदोलन चलते हैं, स्त्री जीवन के अनेक बंधनों को तोड़ने की बात उठती है। वैसे वैसे समूची समाजिक व पूँजीगत व्यवस्था बड़े ही सचेत ढंग से इस परिवर्तन को अपने पक्ष में करने के तत्पर हो जाती है।

उद्देश्य

इस शोध का उद्देश्य मैथिली कविता में महिला-प्रतिनिधित्व का आलोचनात्मक अध्ययन करना है। प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं

- चयनित मैथिली कविताओं में महिलाओं की छवि का विश्लेषण करना।
- स्वतंत्रता संग्राम एवं सामाजिक आंदोलनों का इन चित्रणों पर प्रभाव देखना।
- कविता में महिलाओं की वैध भूमिका वह एक और आदर्श प्रतीक और दूसरी ओर सामाजिक अस्तित्व का मूल्यांकन करना।

हिन्दी कविता और स्त्री विमर्श

प्रगतीवादी एवं स्त्रीवादी आंदोलनों ने स्त्री विमर्श को एक नया आयाम दिया। साठ सत्तर के दशक के बाद यह स्त्री आंदोलन एक नया और मुखर स्वरूप धारण करता है। इस में अब पहले जैसा भारीला व लचीलापन नहीं रहता। उदारीकरण के बाद, खासकर 90 के दशक के बाद से स्त्री विमर्श की सभी वंधी वधाई मान्यताएँ टूटती हैं और स्त्रियाँ अपने जीवन के विमर्श को बढ़ाती हैं।

स्त्री अनेक प्रकार से संघर्ष करती है अपने लिए बंद दरवाज़ों को खोलती है वह समाजिक संबंधों को सुलझाने का प्रयास तो करती ही हैं वह व्यक्तिगत जीवन व पारिवारिक जीवन के उलझे पहलुओं से मुक्त होने का प्रयास करती हैं। इसमें स्त्री जीवन की अपनी एक अस्मिता भी उभर कर सामने आती है।

"धीरे धीरे मेरे कंधे से उतर रहा है मेरा घर धीरे धीरे उतर रही है चमड़ी मेरे ये कपड़े मेरे सामने घुटनों के बल बैठे कह रहे हैं कि अब बहुत हुआ।" (अबुद्धदुप अनामिका, राजकमल प्र०, नई दिल्ली पृ० 56)

अनामिका की यह कविता जितना अपना अर्थ देती है उससे कहीं अधिक कुछ महत्वपूर्ण अर्थों को ध्वानित करती है। स्त्री अब केवल एक घर की विषयवस्तु नहीं है। इसमें सबसे महत्व की बात यह दर्शायी गयी है कि स्त्रियाँ अब "हाउस वाइफ" के टैग से मुक्त होना चाहती हैं। इस कविता के अंत में कह भी बैठता है 'अब बहुत हुआ'। इसका तात्पर्य यही है कि अब तक बंधन व दासता जो वेमकसद तहज़ीबी लिबास ओढ़ाया गया था उसे अब उतार देने का समय आ गया है। उसमें एक खीझ भी है और गुस्सा भी। यह अभिव्यक्तियाँ मौलिक रूप से उसी जकड़वंदी के खिलाफ है जिसमें औरत को इन्सान नहीं माना गया। इस प्रकार की काविताएं मर्दवादी परिवेश व व्यवस्था का प्रतिकार करती है।

"एक गुमसुम गुस्सा उबल रहा है धीरे-धीरे जैसे उबलते हैं मुट्ठी भर चावल शरणार्थी शिविर के बाहर मिट्टी की हाडी में लकड़ियों की आग पर धीरे धीरे लेकिन लगाता" स्त्री जीवन अपनी अस्मिता और स्वत्वबोध को लेकर काफी सतर्क हैं। उसमें धीरे धीरे इस पितृसत्ता के शोषणकारी चरित्र की समझ बनी है। इस समझ के विकसित होने के साथ ही उसमें उस व्यवस्था के खिलाफ काफी गुस्सा भी है। इस गुस्से को उसने पालना भी सीखा है और सभी प्रकार की कुव्यवस्थाओं से लड़ने का हुनर भी इजाद करने का प्रयास किया है।

"चली जाती हूँ उन घाटियों में भटकने जहाँ कतई उम्मीद नहीं है उससे निकलने की मेरी कल्पना ने जिसे चुना है जाती हूँ लौटने हर बार नये सिरे से उन्हीं अक्षरों के बीच जिनसे मिलती जुलती हूँ मिलती हुलती है जो कितनी उन निम्नों से फिर जिनके अर्थ छिपे रहते हैं उजागर होकर भी" यह स्त्री जीवन की स्वाप्निल सच्चाई है इस प्रकार की रचनाओं में कवयित्री ने स्त्री की स्वाभाविक आकांक्षा और यथार्थ के स्वरूप को पहचाना है और उसे अपनी रचना का उपजीव्य बनाया है। आदर्श अं वास्तविक जीवन के अंतर को मिटाने का संघर्ष ही स्त्री विमर्श का केन्द्रीय बिन्दु है। मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करने की एक ललक है जो कि अत्यंत उत्कट है। कुछ इस प्रकार यह भावना व्यक्त हुई है।

"मैं औरत हूँ नहीं है मेरे पास दो चेहरे दो मुँह और दो तरह का जीवन मैं जो हूँ-हूँ जो नहीं हूँ नहीं हूँ

मुझे अफसोस नहीं कि मैं सीता सावित्री के साँचे में फिट नहीं बैठती बक इतना काफी है कि मैं मनुष्य हूँ।"

स्त्री विमर्श में कविता के माध्यम से ऐसी प्रतिरोधी भावना उन सभी पुरुषवादी संस्थाओं के खिलाफ विद्रोह है जो स्त्री समाज को दलता है। इस छल और प्रपंच में जितने आदर्श और प्रतीक गढ़े गये हैं, उनका भी नकार इसमें दर्ज है। बड़े ही मजबूती के साथ में नकार स्वीकारोक्ति के साथ अभिवक्त किये गये हैं। प्रतिकार और तंजिपा लहजे में स्त्रियाँ अपने जीवन की निर्मम सच्चाई को कुछ इस प्रकार बयाँ करती हैं।

स्त्रीवाद के उद्देश्य

सामाजिक परिवर्तन का आन्दोलन : नारी की स्थिति में सुधार लाने के लिए समस्त समाज में परिवर्तन अनिवार्य है। स्त्री एवं पुरुष में लिंगभेद को आधार बनाकर अंतर निर्माण करने की प्रक्रिया सामाजिक है। बचपन से स्त्री के अंदर हीन भाव निर्माण किया जाता है। यह व्यवस्था स्त्री को दबाकर उसे अन्धा बनाती आयी है। स्त्रीवादी विचारधारा उस व्यवस्था को परिवर्तित करना चाहती है। इस व्यवस्था को बदलकर ही नारी बन्धनों से मुक्त होगी। समाजव्यवस्था के परिवर्तन से स्त्री की मानसिकता में अपने आप परिवर्तन हो जाएगा।

स्त्री को मानव / के रूप में प्रतिष्ठित करना : आरम्भ में नारी को समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। उसका भी स्वतंत्र अस्तित्व था। लेकिन धीरे-धीरे स्थितियों में परिवर्तन हुआ और नारी मात्र साधन या भोग्या बनकर रह गयी। " सुदेश बत्रा के अनुसार न जाने कब इतिहास की अँधी गलियों में नारी को पुरुष की छाया और अनुगामिनी बना दिया। वह स्वतंत्र व्यक्ति नहीं, वह प्रथम पंक्ति का व्यक्तित्व नहीं, वह मात्र अन्या है। पुरुष ने उदार होकर उसे इतिहास संस्कृति, परंपरा और मर्यादा के नाम पर देवी पद दिया है। समाज स्त्री को कभी माँ, बेटी, पत्नी तो कभी देवी के रूप में स्वीकार करता है किंतु मानव या व्यक्ति के रूप में नहीं। मानव या व्यक्ति के रूप में उसकी इच्छाएँ हो सकती है यह बात समाज आसानी से भूल गया है। स्त्रीवाद नारी को एक सामान्य मनुष्य के रूप में स्थापित करता है।

नारी की विभिन्न समस्याओं पर विचार : नारी अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न समस्याओं का सामना कर रही है। अन्याय अत्याचार की यह परम्परा लम्बी है। डॉ. अमरज्योति के अनुसार, "अनादिकाल से नारी जाति समाज में चहुँमुखी शोषण का शिकार बनी रही है।" "आधुनिक कालखंड की नारी कदम-कदम पर अनगिनत समस्याओं से संघर्ष कर रही है। नारी की सबसे बड़ी समस्या उसका शरीर है और इससे निर्मित उनके समस्याओं को स्वीकार करना उसकी नियत बन गयी है। नारी इन समस्याओं की इतनी आदि बन गयी है कि उसे इन समस्याओं का एहसास तक नहीं है। स्त्रीवाद ने नारी को इन समस्याओं के प्रति जागृत किया। इस आन्दोलन के द्वारा स्त्री ने स्वयं को दमित के रूप में पहचाना और अंततः दमित होने की नियति से इंकार किया

अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के विरोध में संघर्ष : नारी सदियों से शोषण का शिकार रही है। आज स्त्री घर और बाहर दोनों स्तरों पर शोषण का सामना कर रही है। समाज के निम्न वर्ग में भी नारी का स्थान कनिष्ठ। इस समाज में अलग-अलग नियम बनाकर नारी शोषण किया जा रहा है। प्रभा खेतान अनुसार, "धर्म और संस्कृति की नजर स्त्री के प्रति हमेशा टेढ़ी रही, राजनीति उसे हमेशा मोहर बनाती रही और व्यक्ति पुरुष ने उसे कभी ड्राइंगरूम का सामान समझा, तो कभी बेडरूम का बिछावना, पुरुष चाहे कहीं भी हो, कोई भी हो वह शिल्पी, साहित्यकार, व्यवसायी, मजदूर कुछ भी क्यों न हो औरत को चबाने से

बाज नहीं आता।" "यहाँ बनाये गये कानून भी पुरुष के पक्ष में है। स्त्रीवाद इसके विरोध में जागृति चेतना निर्माण कर रहा

नारी सामर्थ्य की खोज एवं पहचान : नारी के सामर्थ्य की खोज कराके उसे उससे परिचित कराना स्त्रीवाद का प्रमुख उद्देश्य है। पुरुष प्रधान समाज नारी को मात्र एक वस्तु के रूप में देखना पसंद करता है। उसके अंग-प्रत्यंग का वह मूल्य करता है, लेकिन उसके अन्दर जो मेधा है, जो सामर्थ्य उसे उसका कोई मूल्य नहीं रहता। आज स्त्री को उसके सामर्थ्य का एहसास हो रहा है। वह नौकरियों में उच्च स्थानों पर अपना अधिकार सिद्ध कर रही है। कला, खेल, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में स्त्री अपनी क्षमताओं को सिद्ध कर रही है। अपने अधिकारों के प्रति वह जागरूक दिखाई दे रही है। अगर उसे अधिकारों से वंचित रखने का प्रयास किया तो उसके विरोध में संघर्ष करने का सामर्थ्य उसमें आ गया है। उसका श्रेय स्त्रीवाद को ही है।

स्त्री की मानसिकता में परिवर्तन : नारी की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए सर्वप्रथम नारी की मानसिकता में परिवर्तन आवश्यक है। नारी ने पुरुष को अपने जीवन में सर्वेसर्वा मान लिया है। पुरुष के बिना वह स्वयं को अधूरा मानती है। बेटी, पत्नी या माँ बनकर रहना ही उसे स्वीकार है।

अपने अस्तित्व को पूर्णतः नष्ट करके पुरुष के वर्चस्व में वह तथाकथित अच्छा जीवन गुजारती है। हर नारी को स्त्री-सुलभ गुणों का एहसास कराकर उसे तथाकथित आदर्श स्त्री में ढालनेवाली औरत ही होती है। अपने अंदर एक हीन भावना लेकर आज भी औरत जी रही है। सुदेश बत्रा के अनुसार, "स्त्रियों को चाहिए कि वे पुरुषों को झुकाने से पहले अपना हीन भाव दूर करे। समाज में ऐसी स्थितियाँ लाने की जिम्मेदारी स्त्रियों की है। उन्हें पुरुषों का साथ और सहारा मिले उनके पैर की ठोकर नहीं। यदि किसी कारण उन्हें सहारा मिले या मिलकर छिन जाय तो उन्हें अपने हाथ पैरों, अपने दिल दिमाग का सहारा लेना है। तभी उन्हें समाज की शंकित और हीन निगाहों से मुक्ति मिलेगी और यही भारतीय नारी का सही मुक्ति आन्दोलन होगा।" "नारी की परम्परागत मानसिकता में परिवर्तन लाकर उसे अपने 'स्व' या अस्तित्व का साक्षात्कार स्त्रीवाद करा रहा है। नारीवाद एक विचारधारा या चिंतन मात्र है जो स्त्रियों को उसकी परम्परागत भूमिका के विषय में पुनः सोचकर उसके स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान स्थापित करने के लिए उसे नयी दिशा प्रदान करता है। आधुनिक कालखंड में अनेक प्रश्न समाज के सामने उपस्थित हो रहे हैं। इन प्रश्नों का सामना करते हुए आज का व्यक्ति विभिन्न सामाजिक आन्दोलनों का निर्माण कर रहा है। इन सामाजिक आन्दोलनों का प्रभाव स्त्रीवा विचारधारा पर होता है।

उदारतावादी स्त्रीवाद : सन १९९० के पश्चात प्रभावी रूप में सामने आना वाला विचार प्रवाह उदारतावादी स्त्रीवाद है। इस विचार प्रवाह की अपनी एक लम्बी परंपरा है। "मेरी वोलसक्राफ्ट, हैरियट टेलर, जे. एस. मिल, मागरिट, फुल्लर, हैरियट मार्टिनों से ल्युकेशिया मॉट, एलिजाबेथ केंडी, स्टॅटन, सुसान

मॉलर तक उदारतावादी स्त्रियों की लम्बी परम्परा रही है। हमने उदारतावादी तत्त्वों से समता, स्वातंत्र्य, विवेक आदि मूल्यों का स्वीकार करके और उसके आधार बनाकर स्त्री का समाज में स्थान की खोज की है।

उदारतावादी स्त्रीवाद में निजी जीवन के स्वास्थ्य, शांति एवं सहयोग को महत्व दिया है। पूँजीवादी व्यवस्था में व्यक्ति विकास के लिए जो विभिन्न मार्ग निर्माण किए हैं उनको अपना कर स्त्री ने अपना विकास करना चाहिए। इसलिए यहाँ पूँजीपती व्यवस्था का विरोध न करते हुए उसमें कुछ सुधारों की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। निजी सम्पत्ति पर नारी का हक होना चाहिए। स्त्री पुरुष समानता एवं स्त्री स्वातंत्र्य इन्होंने प्रमुख माँग की है। स्त्री और पुरुष में कोई अंतर न होने के कारण उदारतावादी स्त्रीवादीयों ने समान नारी हक्क, मताधिकार, शिक्षा आदि अधिकार स्त्री को प्राप्त होने के लिए प्रयास किए।

सार्वजनिक जीवन में नारी को पुरुष के समान स्थान प्राप्त होने के पश्चात वह पुरुष के साथ आत्मविश्वास के साथ चलेगी ऐसा इन्हें विश्वास है। डॉ. मंगला वानखेडे के अनुसार, "समस्त समाज व्यवस्था परिवर्तित करने की अपेक्षा स्त्री को पुरुषों के समान अवसर प्राप्त होने पर जोर देनेवाला यह विचारप्रवाह है। मानव में वैचारिक क्षमता होने के कारण उसे स्त्री मुक्ति का महत्व समझ में आ सकता है। समान अवसर प्राप्त हो जाने के पश्चात नारी के विकास की जिम्मेदारी उसकी स्वयं की होगी। गुणवत्ता लिंग निरपेक्ष होने कारण वह इसके लिए समाज को दोषी नहीं मान सकेगी। उसे उसकी बुद्धि का, गुणों का प्रयोग करने का अवसर प्राप्त हो।

उदारतावादी स्त्रीवाद ने स्त्री-पुरुष समानता का महत्वपूर्ण विचार व्यक्त करके अपना अलग स्थान बना लिया है। सरला माहेश्वरी ने कहा है, "मेरी वाल स्थनक्राकट ने सबसे पहले इस बात को स्वीकारने से इंकार किया कि स्त्रियाँ बुद्धि की मामले में पुरुषों से कमजोर हैं अथवा छुई हुई पन, नाजुकता तथा सतहीपन उनका नैसर्गिक गुण है। यदि पुरुष और महिलाएँ बुद्धि के समान अधिकारी हैं तो उसका प्रयोग करने की शिक्षा भी उन्हें समान रूप से दी जानी चाहिए। स्त्रियाँ सिर्फ पुरुषों के भोग की वस्तु नहीं हैं, बल्कि एक स्वतंत्र मानुषी हैं जो बौद्धिक शिक्षा पाने में समर्थ तथा उसकी अधिकारी भी हैं। चूँकि पुरुषों और महिलाओं की समान मानसिकता ईश्वर प्रदत्त बुद्धि के अधिकार की हिस्सेदारी पर आधारित है, इन दोनों लिंगों के नैसर्गिक गुण भी समान होने चाहिए।" "वर्ग, वर्ण पुरुष प्रधानता आदि को आधार बनाकर स्त्री का जो शोषण किया जाता है उसकी गंभीरता से यहाँ चर्चा नहीं की लेकिन यहाँ जो विचार व्यक्त किए गए हैं वह अपने आप में महत्वपूर्ण हैं।

मार्क्सवादी / समाजवादी स्त्रीवाद : नारी की स्थिति के संदर्भ में सोचते हुए **मार्क्स** के चिंतन को आधार बनाकर नारी के सर्वहारा व्यक्तित्व को अंकित करनेवाला विचार मार्क्सवादी स्त्रीवाद है। कार्लमार्क्स ने शोषितों की स्थिति पर विचार व्यक्त किये हैं। एक बात महत्वपूर्ण है कि मार्क्स 'स्त्रीवादी' नहीं थे लेकिन

नारी की समाज में जो प्रतिकूल परिस्थिति है उस पर उन्होंने निश्चित विचार किया था। सरला माहेश्वरी के अनुसार, "मार्क्स ने कई स्थानों पर समाज में नारियों की स्थिति को सामाजिक प्रगति के सूचकांक के रूप में देखने की बात कही थी। इसी से चलता है कि वे नारीवादी न होने पर भी नारी मुक्ति के विरोधी नहीं थे।" "इसलिए नारीवादी विचारधारा में मार्क्स के विचारों को अलग महत्त्व है।

मार्क्सवादी स्त्रीवाद में एंगेल्स के विचार अहम् भूमिका अदा करते हैं। इस मामले में खासतौर एंगेल्स की पुस्तक परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति को नारीवादी विमर्श के एक अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान के रूप में देखा जा सकता है। इस पुस्तक में एंगेल्स ने नारियों संबंधी कुछ अवधारणाओं को स्पष्ट किया है। नारी की स्थिति के संदर्भ में वैज्ञानिक आधार के माध्यम से प्रकाश डाला है। इनके अनुसार नारी आर्थिक असमानता के कारण गुलामी का जीवन जी रही है। नारी की स्थिति परिवार में मजदूर की तरह होती है। परिवार के पुरुष के हाथों में सभी आर्थिक सूत्र केंद्रित होने के कारण नारी को परिवार में कनिष्ठ स्थान प्राप्त होता है। एंगेल्स के अनुसार, "परिवार के दायरे में पति बुर्जुआ होता है और पत्नी सर्वहारा होती है।"

मार्क्स एवं एंगेल्स के अतिरिक्त मार्क्सवादी स्त्रीवादी को अन्य विचारवंतों के विचार की लम्बी परम्परा प्राप्त होती है। कुरियर, साँ सीमाँवादी, रॉबर्ट, ओपेन, विल्यम थाम्सन जैसे मार्क्सवादी विचारवंतों ने स्त्रीवादी सवालों का स्वतंत्रता से विचार किया है आरंभिक कालखंड से ही स्त्री पुरुष की दासी थी। यह परम्परागत मान्यता मार्क्सवादी को मंजूर नहीं है। स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह थी की पूरी नारी जाति फिर से सार्वजनिक उद्योग में प्रवेश करे और इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक परिवार का गुण नष्ट कर दिया जाए। मार्क्सवादी स्त्रीवादीयों ने माना है कि नारी की स्थिति मात्र आर्थिक विषमता नष्ट होने से ही सुधर सकती है। पूँजीवादी व्यवस्था जब अस्तित्व में आती है तब तक नारी को शोषित का ही जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। मार्क्सवादी ने नारी मुक्ति के प्रश्न समाज के बहुत ही सुसंगत वैज्ञानिक विश्लेषण के जरिये सामाजिक उत्पादन संबंधों के प्रश्न तथा महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता के प्रश्न के साथ जोड़ा। जब स्त्री आर्थिक पारतंत्र्य से मुक्त हो जाएंगी तब जीवन के विभिन्न बन्धन भी अपने आप नष्ट हो जायेंगे। स्त्री के आर्थिक स्वतंत्रता के संदर्भ में प्रभा खेतान कहती है, "मुक्ति की पहली शर्त है कि स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो। यदि इस शर्त को कोई औरत पूरा कर ले तो वह अपनी जिंदगी की आधी से अधिक लड़ाई जीत लेती है।" परिवार में स्त्री पर जो जिम्मेदारियाँ होती हैं, उनसे वह मुक्त हो जाएगी। मार्क्सवादी स्त्रीवादी के अनुसार लैंगिक विषमता का प्रश्न महत्वपूर्ण है, लेकिन लैंगिक विषमता नष्ट करने की इच्छा रखकर यह विषमता नष्ट नहीं होनेवाली। इसके लिए इतिहास में जिस क्रम से स्त्री आर्थिक पारतंत्र्य में जकड़ी गयी उसी क्रम से मुक्त होना आवश्यक है। मार्क्सवादी स्त्रीवाद ने स्त्री शोषण के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करते हुए इस बात को स्पष्ट किया कि शोषित वर्ग की स्त्री को मुक्त करने का ध्येय सामने रखकर ही स्त्री मुक्ति का ध्येय पूर्ण हो सकता है। जैसे-जैसे सर्वहारा

समाज का विस्तार होगा, नारी का रास्ता प्रशस्त होगा तथा सामाजिक क्रांति के जरिए जब पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था समाप्त होगी तो उसके साथ ही पुरुष श्रेष्ठता की दीर्घकालीन परम्परा की जड़ें भी पूरी तरह समाप्त हो जायेगी।

विद्रोही नारीवाद: विद्रोही स्त्रीवाद स्त्री अनुभवों पर आधारित है। स्त्री जीवन में स्त्री होने के नाते कुछ अनुभव होते हैं, उनको आधार बनाकर लिखा गया साहित्य यह स्त्री द्वारा स्त्री के लिए निर्माण किया हुआ मुक्ति का संदेश है। स्त्री के अनुभव एहसास, जीवन संबंधी दृष्टिकोण इत्यादि को यहाँ महत्व दिया जाता है। विद्रोही स्त्रीवाद स्त्री - शोषण का मूल पुरुषसत्ता में मानता है। उनके अनुसार पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था, पुरुषों का हित ध्यान में रखकर ही कानून बनाती है। सरला माहेश्वरी के अनुसार, "वे राज सत्ता के पूरे ढाँचे को अनिवार्य रूप से पितृसत्तात्मक ढाँचे के साथ जोड़कर देखती हैं और यह मानती हैं कि राज सत्ता के इस ढाँचे को पुरुष ने बनाया है और यह ढाँचा महिलाओं के बजाय पुरुषों के हितों का ध्यान रखता है।" नारी के इस समस्त शोषण को समाप्त करने के लिए पारम्परिक परिवार के ढाँचे को समाप्त करना आवश्यक है, ऐसी इस स्त्रीवादी की धारणा है। विद्रोही नारीवादी परिवार के ढाँचे मात्र को ही नारी के लिए कारागार के रूप में देखते हैं। वे परिवार के इस ढाँचे को तोड़ देने की दलील देते हैं। पुरुष का वर्चस्व सार्वजनिक क्षेत्र तक सीमित न होकर निजी जीवन के कामसंबंध, विवाह, परिवार आदि में भी होता है। उग्रवादी स्त्रीवाद के अनुसार पुरुष का वर्चस्व मात्र राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज आदि सार्वजनिक जगह तक सीमित न होकर निजी जीवन में कामसंबंध, विवाह, परिवार, स्त्री-पुरुष के परस्पर संबंध में भी होता है।

जब तक पुरुषों का यह वर्चस्व समाप्त नहीं होगा। तब तक स्त्री मुक्ति संभव नहीं है। आज आर्थिक समानता लाकर इस समाज को बदला नहीं जा सकता। इसके मूल में छिपी लिंगभेद की भावना नष्ट करने से स्त्री मुक्ति संभव है। सिर्फ आर्थिक परिवर्तन मात्र से समाज की पितृसत्तात्मक सत्ता का जड़ जमाया हुआ ढाँचा बदल नहीं सकता।

ब्रिटिश स्त्रीवाद : ब्रिटिश स्त्रीवाद का स्वरूप राजनैतिक है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में परिवर्तन इस विचारधारा का लक्ष्य है। डॉ. मंगल वानखेडे के अनुसार, "अमेरिकी स्त्रीवाद की निर्मिती प्रमुखतः वहाँ के विश्वविद्यालय के अंग्रेजी साहित्य के विभाग तथा स्त्री अभ्यास केन्द्र से हुई है। इसके विपरीत ब्रिटिश स्त्रीवाद की निर्मिती जनसंचार माध्यम राजनीतिक गुट आदि से हुई है।

निष्कर्ष

आज अनेक प्रकार से हिन्दी कविता स्त्री विमर्श को समृद्ध कर रही है। जल जंगल, जमीन आदि अनेक प्रश्नों को रेखांकित किया जा रहा है। देश को प्रभावित करने वाले सामूहिक मुद्दों को स्त्री विमर्श के माध्यम से

उठाया जा रहा है समकालीन कविता जितना पितृसत्तात्मक समाज से लड़ रही है उतना वैश्वीकृत बाजारवादी जमाने से भी। यह लड़ाई दोहरी है। इसमें सत्ता-प्रतिष्ठानों से मुक्ति की गुहार भी है और अधिकार प्राप्ति का उद्घोष भी। हमारी सामाजिक व्यवस्था ने हमेशा स्त्री को घर की चारदीवारी में रहकर केवल दूसरों के लिए त्याग की मूर्ति बना दिया और उसको स्वयं के बारे में सोचने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया। स्त्री ने जब-जब समाज में निजत्व के बारे में मंथन किया उस पर न जाने कितनी बंदिशें लगाकर पुरुष पथबाधा बनकर खड़ा हो गया। मूलभूत सच तो यह है पुरुष प्रधान समाज स्त्री की असाध्य कार्यक्षमता से भयभीत है। वो सोचता है कि स्त्री में अनोखी शक्ति है यदि उसको समाज में स्वतंत्र कर दिया जाएगा तो वह अपनी काबिलियत के बल पर सबको अपने अधीन कर लेगी। इसी भय के कारण वह स्त्री को बंदिशों में रखकर स्वयं का साम्राज्य स्थापित करना चाहता है। पुरुष प्रधान समाज ने सोचा है कि यदि स्त्री अपने बारे में सोचने लगेगी तो हमारे लिए चुनौतियाँ खड़ी हो जाएंगी। स्त्री पुरुष के प्रेम को भी भीख के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहती। स्त्री कोई वस्तु नहीं है जिसे कहीं पर भी रख दिया जाए उसका भी अस्तित्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चुनी हुई कविताएं- कैलाश वाजपेयी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ -4
2. नयी कविता की चिंतन भूमि-डॉ. ऊषा कुमारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-62
3. कविता के नए प्रतिमान-नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-29
4. जब मैं स्त्री हूँ, रंजना जयसवाल, नयी किताब, नई दिल्ली, सं० 2009, पृ०-32
5. अपने जैसा जीवन-सविता सिंह, राधाकृष्ण प्र०, नई दिल्ली, सं० 2009, पृ०.32
6. स्वप्न समय सविता सिंह, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं० 2013, पृ० 53
7. खुरदुरी हथेलियाँ, अनामिका, राजकमल प्र० नई दिल्ली पृ० 42
8. अबुद्धदुप अनामिका, राजकमल प्र०, नई दिल्ली पृ० 56
9. बाजार के बीचबाजार के खिलाफ प्रभा खेतान, वाणी प्र० नई दिल्ली सं० 2004, पृ० 32
10. समकालीन कविता का सच, डॉ० गुरुचरण सिंह, पृ० 108
11. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सं० 2003, पृ०-15-12 .प्रभाकर, विष्णु (2001) मैं नारी हूँ, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० 5, 6, 10
12. प्रसाद, वेणी (1972) हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, पृ० 47, 49 प्रसाद, जयशंकर कामायनी, पृ० 14, 17
13. भटटनागर, रामरतन (1990) प्रेमचन्द कथा साहित्य: समीक्षा और मूल्यांकन, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 75, 76

14. भारद्वाज, श्री नारायण (1992) प्रेमचन्द के उपन्यास, गिरनार प्रकाशन गुजरात, पृ० 7, मधु, मदनलाल (1985) उपन्यासकार गोर्की और प्रेमचन्द, प्रगति प्रकाशन मास्को, पृ०
15. 366 मदन, इंद्रनाथ (1986) प्रेमचंद एक विवेचन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ. 157,
16. मदन, गोपाल (2012) प्रेमचन्द की आत्मकथा, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० 10, 12
17. नेहरु, जवाहलाल (1965) हिन्दुस्तान की कहानी, ज्ञानमण्डल प्रकाशन इलाहाबाद, पृ० 357
18. नसरीन, तस्लीमा (2010) लज्जा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० 27, 30,
19. पाण्डेय, लक्ष्मीकांत (1981) प्रेमचंद साहित्य संदर्भ, राम बाग कानपुर, पृ.